International Journal of Research
Available at https://edupediapublications.org/journals
p-ISSN: 2348-6848
e-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 12
December 2015

न्यायपालिका व कार्यपालिका में टकरावः एक विश्लेशणात्मक अध्ययन

सपना

रिसर्च स्कॉलर
राजनीतिक विज्ञान विभाग
म.द.वि., रोहतक

शोध आलेख सारः प्रस्तुत शोध पत्र में मैंने भारतीय न्यायपालिका व कार्यपालिका के मध्य उत्पन्न हुये टकराव को स्पश्ट किया है तथा शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के सन्दर्भ में यह स्पश्ट किया है कि किस प्रकार वर्तमान की घटनाऐं इस मूल भावना को ठेस पहुँचा रही हैं। इस मुद्दे पर कार्यपालिका व न्यायपालिका के पक्षों व तर्कों को भी मैंने स्पश्ट करने का प्रयास किया है तथा अंत में अपने सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं।

मुख्य शब्दः शक्ति पृथ्क्करण, कोलेजियम, न्यायपालिका, कार्यपालिका, मूलभावना।

सरकार व न्यायपालिका में टकराव शक्ति के मूल पृथ्क्करण के विरूद्ध हैः–

सरकार के तीन अंगों में विधानपालिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका में से जहां विधानपालिका जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है, वही इनके संरक्षण व सुरक्षा की बड़ी महत्वपूर्ण जिम्मेवारी न्यायपालिका पर है। कार्यपालिका जनता की प्रत्यक्ष रूप से सेवा करती है, व राज्य प्रशासन को सुचारू रूप प्रदान करती है। इन तीनों अंगों को सही ढंग से कार्य करने की आवश्यकता के मद्देनजर बहुत पहले 'अरस्तु' ने व उसके बाद लॉक ने शक्तियों के एक दूसरे से पृथ्थकरण की बात स्वीकार करी थी। क्योंकि वे विद्वान जानते थे कि यदि किसी कारण से ये तीनों कार्य किसी एक ही अंग में समाहित हुए तो जनता प्रताड़ित की जायेगी। 18वीं शताब्दी में मांटेटेस्कयू ने व्यवस्थापित रूप में शक्ति पृथ्थकरण के सिद्धान्त को मान्यता दी। उनकी किताब ''स्प्रिट ऑफ लॉस'' में यह वर्णन है, तब से लगभग प्रत्येक लोकतंत्र में इस सिद्धान्त को मान्यता दी गई है।

हमारा भारत गणराज्य भी उनमें से एक है, चूंकि यहां बात वर्तमान में भारत की सर्वोच्च न्यायपीठ व सरकार के मध्य होने वाले टकराव के कारण इस पृथक्करण की मूल भावना को पहुंची चोट के विशय में की जा रही है तो कहा जा सकता है कि इस प्रकार

के टकराव निःसन्देह ही मूलभावनाओं को ठेस पहुँचाते है। परन्तु इस सन्दर्भ पर यदि बात को गहराई के साथ सोचा जाए तो यह उपरी तौर पर जितनी सरल लगती है। वास्तविकता में उतनी ही अधिक जटिल है। इससे पहले की हम बात पर आगे विचार करे, एक बार इस बात के मूल को विचार में ले की टकराव क्यों है?

दरअसल भारतीय संविधान न्यायाधीशों की नियुक्ति के विशय में कुछ स्पश्ट व्यवस्था नहीं करता इसे चाहे तो यह कहें कि हमारे संविधान निर्माताओं की बड़ी गलती थी या यूँ कि उनको अपने देश की जनता पर इतना विश्वास या की वो उचित निर्णय लेंगी तथा देश के हितों के सदैव प्रथम स्थान पर रखेंगी। पर हुआ इसके पूर्णतः विपरीत भारत के तीनों अंगों ने ही अपनी–अपनी सर्वोच्चता कायम करने की जैसे ठान ली थी। इसीलिए आरम्भ में तो मामला ठीक–ठाक ढंग से ही चलता रहा था। यूं कहें कि न्यायपालिका भी इतनी प्रभावी भूमिका में नहीं आयी थी व सरकार भी न्यायपालिका का सम्मान करती थी। इस कारण न्यायधीशों की नियुक्ति, मुख्य न्यायधीश की सलाह से राश्ट्रपति के द्वारा की जाती रही। परन्तु स्थिति में परिवर्तन तब आया, जब दोनों और से या यूं कहें कि सरकार की पहल के कारण इस व्यवस्था को गड़बड़ाने का सफल प्रयास किया गया। (नाथ रे कि नियुक्ति के समय 1973 में)। तब से स्थिति ऐसी बदली की, समस्या बढ़ती ही गयी। 1981 का प्रथम जज मामले में नींव पड़ी कोलेजियम व्यवस्था, जिसमें न्यायपालिका के 5 वरिश्ठ न्यायधीशों की सहमति के आधार पर महामहिम न्यायधीशों की नियुक्ति करते हैं।

इस प्रकार दिनोंदिन खामियों की शिकार हो गयी। यहाँ यह कहूं कि 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों–ज्यों दवा की' तो ठीक ही होगा। कभी कभी किन्ही और से सुधार के प्रयासों की मांग उठती रही पर समस्या गहराती गई।

अंततः हमारे देश का लाइलाज रोग 'भ्रश्टाचार' हमारी न्यायपालिका या न्याय व्यवस्था में भी सेंध लगाने में कामयाब हो गया तथा भाई–भतीजावाद, वंशवाद, गुप्त बैठके, रिश्वतखोरी, जोकि हमारी राजनीति के एकाधिकार में भी न्याय व्यवस्था में भी शुरू हो गये। यहाँ न्यायाधीश रूमापाल का कथन उचित बैठना है– कोलेजियम में सहमति ट्रेडिंग ऑफ से तय होती है।''।

इस सबके चलते सिविल सोसायटी जोकि अब जागरूक हो चुकी है कि और मांग उठी कि न्यायपालिका में न्यायधीशों की नियुक्ति में न्यायपालिका की तानाशाही का सही समाधान हो इस विकृत कोलेजियम व्यवस्था को समाप्त किया जाए। इस प्रकार की मांग के उठते ही बाट जोह रही कार्यपालिका (सरकार) को भी जैसे न्यायवस्था में सेंध लगाने का मौका मिल गया और कोलेजिसम में सुधार की मांग का सहारा लेकर कोलेजियम को समाप्त करने की व्यवस्था पूरी कर दी गई तथा इस दौरान अस्तित्व में आया राश्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग जिसके गठन पर न्यायपालिका ने फिलहाल रोक लगा दी है तथा सरकार व न्यायपालिका के मध्य राश्ट्रों का शीत युद्ध जारी है।

अब यदि बात करें की सरकार व न्यायपालिका के मध्य टकराव ने शक्ति पृथ्थकरण की भावना की ठेस पहुँचाई है तो सत्य ही है कि संविधान के अनुच्छेद 50 में अभिव्यक्त की गई हमारे संविधान निर्माताओं की मूल भावना आहत हुई है। शक्ति पृथ्थकरण की मूल भावना है:–

- शासन के तीनों अंगों के कार्य व शक्तियां निर्धारित हों।
- कोई अंग किसी अन्य के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण न करे।
- तीनों अंग पृथक–पृथक पर समायोजित ढंग से जनकल्याण की पूर्ति करें।

मगर इस सन्दर्भ में आज न तो कार्यपालिका इस अर्थ को समझ पा रही है और न ही न्यायपालिका।

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार यह टकराव पृथ्थकरण सिद्धान्त को ठेस पहुंचाता है तो :–

- सरकार एन.जे.ए.सी के माध्यम से न्यायपालिका की नियुक्ति प्रक्रिया में घुसना चाहती है।
- संविधान के मूल ढांचे की भावना जो न्याय पालिका की स्वतंत्रता को समर्थन करता है के विरूद्ध सरकार एन.जे.ए.सी. के माध्यम से भंग कर रही है।

इस प्रकार न्यायपालिका का पक्ष अधिक मजबूत लगता है क्योंकि सरकार का यह परिवर्तन करने का प्रयास कहीं न कहीं संदेहास्पद तो लगता ही है।

परन्तु सत्य केवल इतना ही नहीं है इस सन्दर्भ में यदि यह कहा जाए कि दोनों ओर से कुंऐ में भांग पड़ी है तो गलत नहीं होगा क्योंकि गलती या खामियां न तो पूर्णतः सरकार की है न ही न्यायपालिका की कहना तो सरकार का भी ठीक है कि न्यायधीश ही न्यायधीशों को नियुक्त कैसे कर सकते हैं और फिर बात जब भाई–भतीजावाद, रिश्वतखोरी, गोपनीयता तक आ जाए जो कई बार देखी भी जा चुकी है।

सरकार के पक्ष को यहां कई तर्क मजबूत करते हैं– विश्व के किसी भी देश में जज, जजों को नियुक्त नहीं करते, न्यायव्यवस्था में भ्रश्टाचार फैला है, न्यायियक ढांचा, भाई–भतीजावाद, वंशवाद का शिकार है। कॉलेजियम निरंकुश व्यवस्था है आदि।

सरकार के सभी पक्ष सही नजर आत है अब यदि दृश्टि न्यायपालिका के पक्ष डाली जाए तो कह सकते – सरकार न्याय व्यवस्था पर हावी हो जाना चाहती है। शक्ति पृथ्थकरण की भावना के विरूद्ध, मूल ढांचे के विरूद्ध है। कोलेजियम वर्शों से स्थापित है केवल कुछ एक मामलों की छोड़कर कार्य सही ढंग से किया गया है। इस प्रकार दोनों अंग अपनी–अपनी बात की उचित ठहराना चाहते हैं।

अब यदि हम बात करें कि इस टकराव से पृथ्थकरण की मूल भावना को किस प्रकार संरक्षित रखा जाए तो इस परिप्रेक्ष्य में तो न्यायपालिका ही अधिक उचित लगती है क्योंकि यहाँ अगर कार्यपालिका की अपनी जगह बनाने का अवसर मिलता है तो जो हॉल हमारे हमारे देश के स्वार्थ में सिरोपाद दुबे नेताओं ने राजनीति, प्रशासन अर्थव्यवस्था का किया है, वो ही हाल न्यायपालिका का होते देर नहीं लगेगी। कहा कुछ भी जाए– आज भी देश में यह स्थिति यह है कि जनता न्यायपालिका को विश्वास भरी निगाहों से देखती है। आज भी कही न कही न्यायिक व्यवस्था में कल्याण निहित है यदि ऐसा न होता तो कभी कोई राजनेता अदालत न जाता और अदालत जाना तो जेल तो कदापि नहीं जाता। और अगर कार्यपालिका के इस तर्क पर जायें कि संसद सर्वोच्च है, संसद जनता का प्रतिनिधित्व करती है, उसकी बनायी कानून व नीतियों पर न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता तो कहना होगा कि आज भी भारत कि जनता उस मनोवृति, दीनहीनता, अशिक्षा व व्यक्तिपूजा की शिकार है कि बड़े–बड़े अपराधियों को भारी बहुमत से संसद या विधानमण्डल में भेज देती है जबकि निरपराध चरित्र के नेता को जमानत

जब्त की वोट संख्या से पराजित कर देती है। लालकृश्ण आडवाणी का कथन है कि देश में आज भी आपातकाल की सी स्थिति है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बनाये रखना ही हितकारी है।

लेकिन सरकार के हस्तक्षेप को नकारने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि न्यायपालिका को निरंकुशता को स्वीकार कर लिया जाये। कॉलेजियम ज्यों कि त्यों बनी रहे। हांलांकि इसका अर्थ नियुक्ति प्रक्रिया पर गहन, व्यापक व राश्ट्रीय स्तर की बहस हो जिससे अवश्य कुछ न कुछ नया समाधान जो सबको स्वीकार्य होगा निकल कर आयेगा वैसे भी जनता अब थक चुकी है। आम जन बुरी तरह आहत है अब हमें समाधान चाहिए।– ये पंक्तियां यों उचित बैठती हैं–

हो गयी है पीर पर्वत सी अब पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना हमारा मकसद न हो
करो कुछ ऐसा की हालात–ए–सूरत बदलनी चाहिए।

अब समाधान करना व सही समाधान करना समय की मांग है। सिविल सोसायटी में आज सुदृढ लोग हैं जो सरकार के तर्कों से नहीं केवल सुधार व परिणाम से ही संतुश्ट होगें। समाधान केवल पक्षपात रहित ही न हो वह जनता को महसूस भी होना चाहिए, न्यायपालिका व कार्यपालिका को अपनी कपटपूर्ण नीयत बदलनी चाहिए तभी शक्ति पृथ्थकरण के साथ समायोजन भी उतना ही आवश्यक है जितना तीनों अंगों की एक दूसरे से स्वतंत्रता और समायोजन केवल तभी संभव है जब मन व मस्तिश्क में रखकर सरकार को तीनों अंग एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप न लगाकर विश्वास करना अपनी प्रवृति बनाऐ और सबसे उपर लोक कल्याण को रखकर उसके प्रत्येक कार्यों को अपनी अपनी सीमा में रहकर संपादित करें तभी हालात–ए–सूरत बदल सकती है तभी जनहित सुरक्षित रह सकते हैं अन्यथा इस प्रकार यदि सरकार न्यायपालिका को व न्यायपालिका सरकार को लांछित करती रही तो इस विशालकाय आबादी का क्या होगा? जो अपने भविश्य की सुरक्षा इन सत्ता के दावेदारों के हाथों में सौंप कर बैठी हे। अतः शक्ति का पृथ्थकरण संविधान की मूल भावना है, समायोजन इसका दूसरा व अनिवार्य

p-ISSN: 2348-6848
e-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 12
December 2015

पक्ष है जो टकराव के कारण आहत हुआ है। इसे पुनः स्थापित करके संविधान की भावनानुरूप शासन चलाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान – एक परिचय, स्मगपे.छमगपे च्नइसपबंजपवदए ळनतहंवदए 2014ण
- बी. एल. फाड़ियां, भारतीय शासन व राजनीति, साहित्य पब्लिकेशन, जयपुर
- भारतीय शासन व राजनीति – जीम भ्पदकन छमू च्ंचमत 16 ब्बजण 2015ण
- क्रोनिकल मैग्जीन – नवम्बर 2015
- ूेबपण्हवअण्पदण